ISSN 2455-0310

3.3

LISTED UNDER
UGC APPROVED LIST OF JOURNALS

TRANSFRAME

A Bilingual, Bimonthly Multidisciplinary International e-Journal

VOLUME 3, ISSUE 3

JANUARY - FEBRUARY 2018

ग्राम स्वराज और महात्मा गाँधी

शोध-सारांश :

यह शोध-आलेख गाँधी की ग्राम स्वराज की संकल्पना का पुनः पाठ विमर्श है। इसमें यह देखने का प्रयास किया गया है कि ग्राम स्वराज की संकल्पना क्या है और आज वह अपनी अर्थवत्ता में कितना प्रासंगिक है।

ग्राम स्वराज के सन्दर्भ में तुलसी के लोकमंगल की अवधारणा, रामराज्य की अवधारणा को ग्राम स्वराज की अवधारणा के निहितार्थ रूप में देखा गया है। आज के सन्दर्भ में यह दिखता है कि वैश्विक धरातल पर जहाँ हम ग्लोबल होने के नाम पर अपने गाँवों से कटते जा रहे हैं लेकिन गाँधी ने इस पर आगाह करते हुए कहा था कि बिना ग्रामीण विकास के हम सच्चे अर्थों में राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकते।

अतः गाँधी की निगाह में लोक सबसे महत्त्वपूर्ण है। बिना लोक के राष्ट्र की अवधारणा बेमानी है। अतः इसी लोक के सर्वांगीण विकास के लिए ग्राम स्वराज की संकल्पना को विकसित किया। प्रस्तुत शोध आलेख में इन सभी घटकों पर विचार किया गया है। यह शोधालेख इस बात पर मुख्य जोर देती हुई नजर आती है कि '' 'ग्राम स्वराज' की संकल्पना व्यक्ति के स्वाधीन चेतना के साथ विकसित है। यदि व्यक्ति समूचे रूप से आर्थिक और सामाजिक रूप से स्वाधीन नहीं होगा तब तक समानता का अधिकार हासिल नहीं कर सकता और न ही ग्राम-स्वराज पूर्णतः प्राप्त किया जा सकता है।''

डॉ. संजीव कुमार तिवारी

एसोसिएट प्रोफेसर
(राजनीति विज्ञान)

महाराजा अग्रसेन महाविद्यालय,

दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली

भारतीय इतिहास में स्वाधीनता आंदोलन का समय बहुत प्रकार की सैद्धांतिकियों के निर्माण का समय है। भारत में धीरे-धीरे इस धारणा को प्रबलता मिलती है कि राष्ट्र सर्वोपरि है और उसकी रक्षा किसी भी प्रकार से होनी चाहिए। अतः राष्ट्र की अवधारणा और उसकी मान्यता को नया बल मिला। महात्मा गांधी ने इस अवधारणा को नया आयाम दिया जिसमें लोक पक्ष का समावेश होता है। राष्ट्र की अवधारणा हो या ग्राम स्वराज की अवधारणा हो सभी में गाँधी ने लोक की उपस्थिति को सबसे लाभकारी और महत्त्वपूर्ण माना।

1909 में छपे 'हिन्दी-स्वराज' की अवधारणा में भी लोक अभिमुखता का दर्शन होता तो वहीं ग्राम स्वराज में भी लोक की सत्ता के विकास के आयाम दिखाई देते हैं। यह लोक ही भारतीय शासन व्यवस्था का केन्द्रवर्ती तत्व है अर्थात् उसकी आत्मा है। अतः यह भी एक आधार रहा कि गाँधी का समूचा चिंतन और दर्शन लोक अर्थात् ग्राम को ही केंद्र में रखकर संचालित हुआ है। और इसी आधार पर गांधी का मानना था कि भारत के विकास की अवधारणा और संरचना गांवों को केन्द्र में रखकर ही विकसित की जाय तो हम अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। इसी लिए गांधी 'ग्राम-स्वराज' की अवधारणा और उसके व्यवहारिक सहभागिता और सक्रियता को विकसित किया। 'यंग इण्डिया' में स्वराज शब्द को परिभाषित करते हुए यह कहा गया कि स्वराज पवित्र और वैदिक शब्द है जिसका अर्थ है आत्मशासन और आत्म संयम। अंग्रेजी शब्द 'इंडिपेंडेंस' शब्द अक्सर सब प्रकार की मर्यादाओं से मुक्त निरंकुश आजादी और स्वच्छन्दता का भाव और अर्थ देता है। वह अर्थ स्वराज शब्द में नहीं है।1

अर्थात् स्वराज शब्द मर्यादा संवलित शब्द है और यह कहना गलत नहीं है कि स्वराज एक स्वस्थ व्यक्ति और समाज निर्माण के लिए प्रक्रिया भी है, आत्मानुशासन भी है और स्वाधीनता के रूप में परिणति भी है। गांधी ने स्वयं ही स्वीकार किया कि स्वराज वह संकल्पना है जिसमें लोक सम्मति का

शासन अनिवार्य होता है। गाँधी के अनुसार ''सच्चा स्वराज थोड़े लोगों द्वारा सत्ता प्राप्त कर लेने से नहीं बल्कि जब सत्ता का दुरुपयोग होता हो तब सब लोगों द्वारा प्रतिकार करने की क्षमता में है।''2

यहाँ यह तथ्य देना गलत नहीं होगा कि गाँधी पर तुलसी का प्रभाव था जिन्होंने घोर शास्त्रीय परिवेश में लोक की प्रतिष्ठा को संकल्पित किया।

''करबि लोकमत साधुमत''3

अतः लोक सम्मति प्रथम सोपान है जिससे विकास भी लोक मंगलकारी अवधारणा को, उसके लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। गांधी का ग्राम स्वराज इसी लोकमंगलकारी अवधारणा की पुनः संरचना है जो नए युगानुकूल संदर्भ में प्रस्तावित किया गया।

गांधी ने केवल परिणति या साध्य पर ही विचार नहीं किया बल्कि साध्य को प्राप्त करने वाले साधनों पर भी विचार किया जिसमें 'सत्य' और 'अहिंसा' साधन स्वरूप है। बिना इन साधनों को अपनाए 'स्वराज' की प्राप्ति नहीं की जा सकती है। गाँधी ने इनको 'शुद्ध साधन' के रूप में परिभाषित किया। शुद्ध और सच्चे साधन के अभाव में कभी भी सच्ची लोकसत्ता और जनता के स्वराज को प्राप्त नहीं किया जा सकता है और नहीं वैयक्तिक स्वतंत्रता की रक्षा की जा सकती है। इसी लिए गांधी ने कहा कि ''वैयक्तिक स्वतंत्रता को प्रकट करने का पूरा अवसर विशुद्ध अहिंसा पर आधारित शासन व्यवस्था में ही मिल सकता है।''4

अतः यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि गाँधी के स्वराज की अवधारणा समाज की इकाई निर्माण अर्थात् व्यक्ति निर्माण की अवधारणा है। राष्ट्रीय स्तर पर स्वराज की संकल्पना व्यक्ति की स्वाधीनता और आत्मानुशासन की संश्लिष्ट प्रक्रिया का प्रतिफलन है। इसीलिए वह सत्य के समकक्ष है। शायद इसीलिए गांधी ने अपनी पुस्तक का नाम 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' रखा। दरअसल यह पुस्तक स्वराज के आत्मानुसंधान की महत्त्वपूर्ण परिणति है। इनका मानना था कि भारत की अधिकांश आबादी गांवों की आबादी है। नेहरू ने कहीं इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि कोई भी व्यक्ति या समूह जब अपना ही विचार करेगा, उतना ही अधिक खतरा उस व्यक्ति के या समाज के अंतःकेंद्रित, स्वार्थी और संकुचित बन जाने का रहेगा। आज हमारे गांवों में सामाजिक फूट, जातिवाद और संकुचित दृष्टि से तमाम प्रकार के कष्टों का भोग कर रहे हैं।'' गांधी की स्वराज अवधारणा यही महत्त्वपूर्ण दिखती है जिसमें स्वाधीन समाज की निर्मिति प्रतिफलित होती है।

गांधी का 'ग्राम स्वराज' इसी संकल्पना और व्यवहारिक परिणति के साथ आज भी प्रासंगिक बना हुआ है। गांधी ने गांवों को भारत की आत्मा के रूप में स्वीकार किया और कहा कि ''ग्रामीणों के उत्कर्षपूर्ण जीवन के लिए हमेशा उत्कृष्ट, आत्मनिर्भर, आदर्शवादी पंचायतीराज और स्वराज की धारणा का विकास होना अनिवार्य होना चाहिए।''5

अब इस स्वराज की अवधारणा को 'ग्राम स्वराज' के सैद्धांतिक प्रस्ताव को निम्न रूप में देखा जा सकता है-

1. समानता-

प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन और विकास को सुनिश्चित करने के लिए समान अधिकारों का मिलना आवश्यक होता है। गांधी ने कहा कि समान अवसर से व्यक्ति जहां एक ओर अपना भौतिक विकास करता है तो दूसरी ओर अपना आध्यात्मिक विकास करता है। जबतक भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही विकासों का समन्वय और समायोजन नहीं होगा समानता का लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। ग्राम स्वराज के लिए समानता आवश्यक घटक है।

गाँधी ने ग्राम स्वराज की अवधारणा के लिए समानता को एकांगी रूप में नहीं देखा बल्कि मुकम्मल रूप में विचार करते हुए कहा कि व्यक्ति दोनों ही आर्थिक और सामाजिक स्तरों पर जबतक बराबरी का दर्जा हासिल नहीं करेगा तबतक समानता का मकसद पूरा नहीं होगा।

इसीलिए गाँधी ने सबके विकास के लिए और समानता के लिए लघु और कुटीर उद्योग की वकालत की। यह आर्थिक समानता के लिए गाँधी द्वारा उठाया गया बड़ा कदम है। और सामाजिक समानता के लिए उन्होंने नारा ही दिया-

ईश्वर अल्लाह तेरो नाम

सबको सम्मति दे भगवान।

जिसकी अवधारणा में ईश्वर और अल्लाह दोनों अपनी-अपनी शक्ति और सीमाओं में साथ एक ही धरातल पर उपस्थित हो तो मानव-मात्र एक ही धरातल पर क्यों नहीं। दरअसल पहले ही कहा जा चुका है कि गाँधी तुलसी की संकल्पना और अवधारणा से प्रभावित थे अतः उनके भी मन में समानता की रामराज्य की अवधारणा थी। अतः यह कहना अतिश्योक्ति नहीं कि गाँधी का स्वराज रामराज्य की संकल्पना का पुनरावर्तन है जो अपनी प्रासंगिकता के साथ आज भी जीवंत है। ''वस्तुतः 'ग्राम स्वराज' की संकल्पना व्यक्ति के स्वाधीन चेतना के साथ विकसित है। यदि व्यक्ति समूचे रूप से आर्थिक और सामाजिक रूप से स्वाधीन नहीं होगा तब तक समानता का अधिकार हासिल नहीं कर सकता और न ही ग्राम-स्वराज पूर्णतः प्राप्त किया जा सकता है।''

मानव का सर्वोच्च ध्येय होता है एक आदर्श समाज की स्थापना करना। वह तभी हो सकता है जब व्यक्ति बौद्धिक और नैतिक उन्नति के साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नति करे। सच्ची समानता यही होगी। तभी ग्राम स्वराज का संकल्प पूरा होगा।

2. विकेन्द्रीकरण-

अर्थात् शक्ति केन्द्रों का विसर्जन। विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया से सामान्य से सामान्य व्यक्ति को सशक्त बनाया जा सकता है, जिससे वह उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है।

शक्ति के लगभग सभी लोगों ने सत्ता का अनिवार्य गुण स्वीकार किया है जो कि दमनकारी और शोषण की व्यवस्था को जन्म देती है। गाँधी ने शक्ति के विकेन्द्रीकरण की बात कही। मैं आज शक्ति के हवाले से बात कहूं तो लगभग सभी साहित्यकारों में शक्ति के विकेंद्रीकरण को प्रस्तावित किया। राम और कृष्ण का जीवन स्वयं इसका उदाहरण है और ग्राम स्वराज की अवधारणा का पोषक है। गांधी इन सबकी गवाही पर ही यह संकल्पित करते हैं कि विकेन्द्रीकरण के अभाव में ग्राम स्वराज अधूरा है। अतः आर्थिक केंद्रों का विकेंद्रीकरण आवश्यक है जो लघु और कुटीर उद्योगों के विकास के साथ ही सम्भव हो सकता है।

3. संरक्षकता-

आर्थिक समानता की दशा में जो धनवान है उसको संरक्षकता के सिद्धांत में विश्वास होना चाहिए। इस सिद्धांत में यह वर्णित है कि धनवान व्यक्ति को अपने पड़ोसी व्यक्ति से अधिक धन संचय करने का अधिकार नहीं है। इसे गांधी ने समाज सेवा के रूप में देखा है। यही सेवा भाव समाज को स्वराज की ओर अग्रसारित करता है।

4. स्वदेशी-

गाँधी के अनुसार स्वदेशी एक सार्वभौमिक धर्म है। मनुष्य का पहला धर्म अपने स्वदेश का होना चाहिए। इस आग्रह से हम आर्थिक सम्पन्नता और विकास की दिशा में सुनिश्चित कर सकते हैं।

गाँधी के लिए स्वदेशी एक व्रत के समान था। इसको व्रत इसलिए कहा कि व्रत तो एक अडिग निश्चय होता है। तमाम प्रकार की अड़चनों को पार करके बिना टूटे जो संकल्प किया जाय वही व्रत होता है। गाँधी भारतीय अर्थ व्यवस्था में हो रहे परिवर्तनों को नजदीक से देख रहे थे। उन्होंने बहुत ठीक से देखा कि हमारे देश में लघु और कुटीर उद्योगों का ह्रास हो रहा है। बेरोजगारी का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। अतः गांधी ने स्वदेशी का व्रत लिया। और कहा कि बिना इस व्रत को धारण किए भारतवर्ष को शक्ति सम्पन्न राष्ट्र नहीं बनाया जा सकता।

स्वदेशी वस्तुतः एक साझा समन्वय का उपक्रम है। इसका मूलधर्म अपनी प्रकृति में विद्यमान रहते हुए किस प्रकार सबका अभ्युदय और सबके द्वारा अभ्युदय को सुनिश्चित कर सकता, का है। अतः गांधी का स्वदेशी विचार समुन्नत राष्ट्र और गांव का विचार है। इन्होंने तो यहां तक कहा कि स्वदेशी का पालन करते हुए मृत्यु भी हो जाय तो ठीक है परदेशी तो वैसे ही खतरनाक है।

इस प्रकार स्वदेशी तो अपना स्वधर्म है। दोनों ही एक दूसरे के पर्याय हैं। जिस प्रकार राष्ट्र की चिंता करना उसके हित की चिंता करना स्वधर्म है उसी प्रकार स्वदेशी विचार रखना और उसपर अमल करना स्वधर्म है। इस स्वदेशी स्वधर्म से निरंतर समाज के अंतिम और उपेक्षित वर्ग की सेवा सामाजिक स्तर सुधार और आर्थिक स्तर सुधार के रूप में की जा सकती है।

गांधी के सामने भारत की गरीबी नर्तन कर रही थी। चंपारन से लेकर भारत के तमाम हिस्सों में गरीबी का जो आमल था वो असहनीय था। गाँधी ने इसका कारण आर्थिक और औद्योगिक क्षेत्र में स्वदेशी के न होने को स्वीकार किया।

इस प्रकार ग्राम स्वराज की अवधारणा में स्वदेशी का स्वधर्म भाव मील का पत्थर है। बिना उसके ग्राम स्वराज की संकल्पना कदापि मजबूत नहीं हो सकती।

5. स्वावलम्बन-

स्वावलम्बन का सीधा संबंध प्रकृति के साथ समन्वय से है। यह समन्वय ही व्यक्ति को स्वावलम्बी बनाता है। गांधी ने स्वयं इस तथ्य पर विचार किया कि ग्रामीण समूहों की दृष्टि आदर्श होनी चाहिए जिनको अपनी आवश्यकताओं का ज्ञान हो और वे आपस में पूर्ण और आत्मनिर्भर हो।''6

अतः प्रत्येक गांव को अपने पैर पर खड़ा होना होगा, अपनी जरूरतें खुद पूरी करनी होंगी। वह अपना सारा कारोबार स्वयं चला सके। और यहां तक कि वे सारी दुनिया से अपनी रक्षा स्वयं कर सके।''7

6. पंचायती राज-

ग्राम स्वराज की अवधारणा के विकास में गाँधी ने पंचायती व्यवस्था को महत्त्वपूर्ण घटक के रूप में स्वीकार किया और कहा कि ''गाँव का शासन चलाने के लिए गाँव के पाँच व्यक्तियों की एक पंचायत चुनी जाएगी। इसके लिए नियमानुसार एक खास निर्धारित योग्यता वाले वयस्क स्त्री-पुरुष को अधिकार होगा कि वे अपना पंच चुन लें।''8

चूँकि इस ग्राम स्वराज में दंड की कोई प्रथा नहीं होगी अतः पंचायत अपने एक साल के कार्यकाल में स्वयं धारा सभा, न्याय सभा और व्यवस्थापिका सभा को सारा कार्य संयुक्त रूप से करेगी।

7. नयी तालीम

ग्राम स्वराज तभी सच्चे अर्थ में प्रतिफलित होगा जब समाज का प्रत्येक व्यक्ति शिक्षित हो। गांधी की नजर में शिक्षित होने का अभिप्राय शरीर, मन और आत्मा की शिक्षा। अक्षर ज्ञान मनुष्य का न तो अंतिम लक्ष्य है और न ही उसकी आत्मा का अंतिम लक्ष्य है। और सच्चे अर्थों में ग्राम स्वराज तभी फलीभूत होगा जब ऐसी नयी तालीम व्यवस्था लागू होगी।

किसी विद्वान ने कहा है कि शिक्षा ज्ञान की प्रक्रिया को तेज कर देता है। अर्थात् शिक्षा ही वह उपकरण है जो मनुष्य को ज्ञानी बनाता है। यहां ज्ञानी बनने का अर्थ है विवेकशील होना। और विवेकशील होने का मतलब है सत्य और असत्य का अन्वेषण करना। विवेकशील वही हो सकता है जो सही और गलत की पहचान कर सके। यह बिना शिक्षा के सम्भव नहीं है। गांधी ने इस दबाव को महसूस किया। उनकी चिंता थी कि पश्चिमी ज्ञान का प्रभाव इतना व्यापक होता जा रहा है कि व्यक्ति की सफलता और सार्थकता का अंतर मिटता जा रहा है। सफलता व्यक्ति की नितांत एकनिष्ठ उपलब्धि होती है जबकि सार्थकता एकनिष्ठ होते हुए भी सर्वजनीन हो जाती है। गांधी व्यक्ति और समाज की सार्थकता के हिमायती थे इसीलिए नयी तालीम व्यवस्था को प्रस्तावित करते हुए कहा कि शिक्षा वही होती है जो व्यक्ति के आत्मा का विकास करे।

निष्कर्ष

अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि गांधी का ग्राम स्वराज अपने वैचारिक और दार्शनिक पृष्ठभूमि में भौतिक उन्नति और आध्यात्मिक उन्नति के समन्वय पर आधारित है। विरूद्धों के सामंजस्य के आधार पर गांधी ने स्वराज और ग्राम स्वराज की अवधारणा को विकसित किया जो आज भी हमारे लिए प्रासंगिक है।

ग्राम स्वराज की संकल्पना में जितने भी आयामों पर गांधी ने विचार किया है वे उसकी आत्मा के स्वरूप है। गाँधी ने केवल बाहरी वायवीय स्थूल विकास की बात नहीं की बल्कि व्यक्ति और समाज के मनोविज्ञान को भी बदलने की वकालत की।

यह बहुत ही प्रामाणिक तथ्य है कि आधुनिक मनुष्य लोकतांत्रिक मनुष्य है। अतः वही आधुनिक होगा जो लोकतांत्रिक मूल्यों का पालक होगा, उसका व्यवहार करने वाला होगा। गांधी ने इसकी प्रतिष्ठा के लिए स्वराज की अवधारणा को विकसित किया। लोकतंत्र और स्वराज दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों की अन्योन्याश्रित ही दोनों के आभ्यांतरिक संकल्पना को सार्थकता प्रदान करती है।

ग्राम-स्वराज में दोनों ही बातें शामिल हैं। एक तरफ जहाँ राजनीतिक शक्ति सम्पन्नता के लिए पंचायतीराज की बात करते हैं वहीं

दूसरी ओर आंतरिक विकास के लिए नयी तालीम व्यवस्था की पैरोकारी करते हैं। अतः यह कहना अतार्किक नहीं होगा कि गाँधी ने 'ग्राम स्वराज' की अवधारणा को आभ्यांतरिक रूप से मजबूत किया। जिस प्रकार सच्चे मनुष्य के विकास के लिए मन और बुद्धि के समन्वय की आवश्यकता होती है ठीक वैसे ही सच्चे राष्ट्र और समाज के निर्माण के लिए आभ्यांतरिक परिस्थितियों में समन्वय की आवश्यकता होती है। ग्राम-स्वराज की संकल्पना इसको पूर्ण करती संकल्पना है।

आज हमारे समाज में जो चुनौतियाँ विद्यमान हैं वे उच्छृंखल विकास की अंधी दौड़ की ही मूल परिणति है। यदि ग्राम स्वराज अपने सही मायने में भारतीय समाज में अर्थवान होता तो इन समीक्षाओं का नामों निशान नहीं होता।

अतः निष्कर्षतः ग्राम-स्वराज की अवधारणा गांधी की सुचिंतित संकल्पना थी जिसमें व्यक्ति निर्माण से लेकर राष्ट्र निर्माण की दौड़ दिखाई देती है।

संदर्भ :

1. यंग इण्डिया, 19 मार्च 1931, पृ. 38
2. गोस्वामी तुलसीदास, रामचरित मानस, पृ. 220
3. हिन्दी नवजीवन, 29 जनवरी, 1925, पृ. 198
4. गांधी हरिजन सेवक, 27 मई 1959, पृ. 143
5. गांधी हरिजन सेवक, 2 अगस्त 1942, पृ. 8
6. गांधी हरिजन सेवक, अगस्त 1944, पृ. 72
7. गांधी सत्याग्रह और समाज, 1940, पृ. 10
8. गांधी सत्याग्रह और मैं, 1942, पृ. 2

www.transframe.in